JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पालि साहित्य में शासन कला: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो0 आयशा फ़ातमी
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
नारी शिक्षा निकेतन पीजी कॉलेज लखनऊ

पालि साहित्य मुख्यतः बौद्ध धर्म एवं दर्शन से संबंधित है। इनमें त्रिपिटक प्रमुख हैं जिनका प्रधान उद्देश्य तो धर्मोपदेश ही हैं, किन्तु इनमें तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था, शासन–संचालन तथा शासकीय उत्तरदायित्वों का भी विवरण यत्र–तत्र बिखरा पड़ा है। चक्रवर्ती राजा की अवधारणा, दस राजधम्म, संघीय प्रशासन तथा न्यायपूर्ण शासन की संकल्पना के संदर्भ में पालि साहित्य का विशेष महत्व है। प्रस्तुत शोध पत्र में पालि साहित्य में शासन कला के महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्र कर उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पालि साहित्य में शासन व्यवस्था वास्तव में केवल सत्ता प्रबन्धन की व्यवस्था न होकर, करुणा, लोक कल्याण, नैतिकता और लोकहित पर आधारित एक समग्र व्यवस्था है।

मुख्य शब्द– पालि साहित्य, त्रिपिटक, राजधम्म, चक्रवर्तिन

पालि साहित्य[1] के अन्तर्गत महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं और थेरवादी बौद्ध धर्म के पवित्र ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। इसमें मुख्यतः निम्न हैं–

1. त्रिपिटक
2. त्रिपिटक पर आधारित अठकथाएं (भाष्य)
3. महत्वपूर्ण ग्रंथ जैसे मिलिन्द पन्ह, दीपवंश, मह्यावंश
4. व्याकरण और कोश
5. काव्य और छन्दशास्त्र आदि

शताब्दियों तक इन पर आधारित शिक्षाओं को श्रुति के आधार पर कंठस्थ किया जाता था और इसका प्रसार मौखिक ही था। संभवतः प्रथम शती ई0पू0 में इन्हें लिपिबद्ध किया गया।[2] आधुनिक काल में थॉमस विलियम रीस डेविड्स ने 1881 में पालि टेक्स्ट सोसाइटी (Pali Text Society)[3] की स्थापना की जिसके पश्चात पालि ग्रन्थों के अध्ययन और प्रकाशन में प्रोत्साहन मिला।

पालि ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे केवल धार्मिक संदेशों के वाहक ही नहीं हैं, अपितु प्राचीन भारतीय राजनीतिक चेतना और शासन संरचना को भी स्पष्टतः प्रतिबिम्बित करते हैं। जातक साहित्य तथा विभिन्न निकायों में शासक, शासन केन्द्र, न्याय, दण्ड तथा लोक कल्याण कारी राज्य व्यवस्था की स्पष्ट अवधारणाएं मिलती हैं।

राज्य एवं राजा की उत्पत्ति– प्राचीन भारतीय रानीतिक चिंतन में राज्य की उत्पत्ति के मुख्यतः चार[4] सिद्धान्त मिलते हैं–

1. दैवीय उत्पत्ति
2. परस्पर संविदा
3. युद्धमूलक उत्पत्ति
4. चुनाव द्वारा

पालि साहित्य में मुख्यतः चौथे सिद्धान्त को ही मान्यता मिली है। यहाँ राज्य की उत्पत्ति सामाजिक आवश्यकता से उत्पन्न मानी गयी है। समाज में अराजकता एवं अव्यवस्था बढ़ने पर सामान्य जन ने एक ऐसे व्यक्ति के चयन की आवश्यकता का अनुभव किया जो न्याय करे तथा नियम निर्देशों का प्रतिबद्धता से पालन कराए।[5] राज्य एवं राजा का सर्वप्रमुख कर्तव्य आंतरिक एवं वाघ्य समस्याओं से जनता की रक्षा करना था। दान शीलता एवं धर्माचरण राजा तथा प्रजा दोनों में नैतिक उन्नयन के लिए आवश्यक था। राजा के सद्‌गुण ही उसको राज्य के योग्य बनाते थे।[6] बुद्ध का शासन दर्शन नैतिकता (धम्म) पर आधारित था जिसमें शासक को लोक सेवक माना गया है, न कि निरकुंश सत्ता का स्वामी।[7]

शासन का नैतिक स्वरूप– राजा को 'धम्मसम्मत' और 'महासम्मत' माना गया है,[8] जातकों में उल्लिखित है कि राजाओं को धर्माचरण करते हुए धर्मपूर्वक माता–पिता, पत्नियों, संतानों, बान्धवों, सम्बंधियों, अधिकारियों, मित्रों, प्रजा, ब्राह्मण–श्रमणों एवं पशु–पक्षियों के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए।[9]

बौद्ध साहित्य में राजा की वैधता नैतिक आचरण से संबंधित है, वंश व दैवीय अधिकार की प्रायः अवहेलना की गई है। अंगुत्तर निकाय के मेत्त सुत्त के अनुसार बुद्ध अपने पूर्व जन्मों के विषय में बताते हैं–........ सैकड़ों बार मैं चक्रवर्ती सम्राट बन चुका हूँ, जहाँ मैंने धर्मपूर्वक धर्मराज बनकर चारों दिशाओं के अन्त तक समस्त प्रदेश जीतकर चिरकाल तक राज्य किया......... इस प्रकार मैंने समुद्रपर्यन्त भूमण्डल को धर्मपूर्वक नियंत्रित कर राज्य किया था .... जबकि मैंने दण्ड एवं शस्त्र के बिना ही समस्त पृथ्वी को जीतकर बिना कोई लूटपाट किए ही इस पर राज्य किया।[10]

दस राजधम्म– पालि ग्रन्थों में राजा को धम्म पालक (धर्म का रक्षक) माना गया है, इसी कारण उसके लिये शासन एक नैतिक उत्तरदायित्व है। इसी संदर्भ में दस राजधम्म की अवधारणा को पुष्टि मिलती है जो एक राजा के आदर्श शासन हेतु दस गुणों का विधान करती है। ये गुण निम्न हैं–[11]

दान– यह गुण राज्य के आर्थिक न्याय और सामाजिक सुरक्षा से संबंधित है।

शील– राजा का आचरण समाज के लिए नैतिक मानक निर्धारित करता है।

परित्याग– ये गुण निष्काम नेतृत्व की अवधारणा प्रस्तुत करता है।

सत्यनिष्ठा– न्यायप्रिय शासन हेतु पारदर्शी शासन आवश्यक है।

मदृता– शासन में मानवीय संवेदनाओं को सर्वोपरि रखना है।

तप– यह गुण भ्रष्टाचाार निरोध का मूल सिद्धान्त है।

क्रोध नियन्त्रण– क्रोध अन्याय को जन्म देता है, अतः क्रोध नियंत्रण आवश्यक है।

अहिंसा– ये गुण लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना को मूर्तरूप देता है।

क्षमा– यह गुण सहिष्णु राजा का प्रतीक है।

अविरोध– यह गुण 'जनमत' को महत्व प्रदान करता है।

गण्डतिण्डु जातक के अनुसार– अप्रमाद अमृतपद है और प्रमाद मृत्युपद है–प्रमादी राजा अपने और अपने राज्य के विनाश का कारण बनता है– उसके राज्य में चोर डाकू बढ़ जाते हैं– अप्रमादी राजा का प्रशासन और समृद्धि बढ़ती है[12]। महाकपि जातक में महाकपि राजा को निर्देशित करता है–

राजा! सेना और नगरों की प्रसन्नता और सुख आपको प्रिय होना चाहिए, यदि आप वास्तव में शासन करना चाहते हैं।[13]

दस राजधम्म पालि साहित्य में आदर्श शासन कला का नैतिक संविधान है। यह राजा को निरंकुश नहीं बनने देता, अपितु उसे लोकसेवक के रूप में प्रस्तुत करता है।

धर्म चक्रवर्तिन की संकल्पना– धर्मचक्रवर्तिन की अवधारणा को पालि साहित्य में आदर्श शासन प्रणाली का सर्वोच्च रूप माना गया है। चक्र धर्म, गति एवं सार्वभौम सत्ता अथवा शासन का प्रतीक है एवं वर्तिन अथवा वर्ती का अर्थ 'जिसके अनुसार चलने वाला' अर्थात चक्रवर्ती का अर्थ– जो धर्मचक्र के अनुसार शासन करता है एवं जिसकी सत्ता सम्पूर्ण भू–मण्डल तक नैतिक रूप से विस्तृत है। धर्मचक्रवर्ती राजा के कर्तव्यों में मुख्यतः धम्म की रक्षा, प्रजा की सुरक्षा, आर्थिक न्याय एवं सामाजिक समरसता बनाए रखता है।[14]

अंगुत्तर निकाय के अनुसार बुद्ध भिक्षुओं को निर्देशित करते हैं–भिक्षुओं! वह धार्मिक चक्रवर्ती राजा जो राज्य शासन चलाता है, उसके पीछे भी किसी का हाथ होता है, वह निरकुंश नहीं होता......उस पर धर्म का शासन (अंकुश) होता है।[15]

एक निरंकुश शासक 'बल' पर आधारित शासन करता है। ब्राह्मण साहित्य, शासकों द्वारा अश्मवेध करने, युद्ध द्वारा दिग्विजय करने, पराजित शासक को अधीनता स्वीकार कराने वाले शासकों को चक्रवर्ती मानते हैं। समुद्रगप्त की प्रयाग प्रशस्ति इसका प्रमाण है। निरंकुश शासकों का प्रमुख ध्येय सत्ता संरक्षण जिसे वह भय अथवा दण्ड के द्वारा संरक्षित करते हैं। उनका राज्याधिकार वंश एवं शक्ति पर आधारित होता है। इसके विपरीत पालि साहित्य का धर्म चक्रवर्तिन सदैव धर्म पर आधारित शासन करता है। उसका सम्पूर्ण कार्यकलाप धर्मानुशासित होता है। उनका प्रधान लक्ष्य लोक कल्याण तथा जनता की समृद्धि तथा सुख होता है। उसका शासन अंहिसा करूंणा पर आधारित होता है। धर्मचक्रवर्ती राजा सम्पूर्ण प्रजा, यहाँ तक कि पशु–पक्षियों तक की रक्षा करता है। विजित राजाओं को भी सदाचरण एवं शील का निर्देश देता है और प्रजा पर भी उन्ही सिद्धान्तों को लागू करता है।[16] आदर्श शासन व्यवस्था में उत्तराधिकार वंशानुगत न होकर नैतिक वैधता पर आधारित होता है।[17]

ऐतिहासिक संदर्भ में अशोक में 'धर्मचक्रर्तिन' के आदर्श देखने को मिलते हैं। उसके धम्मलेखों में अहिंसा, प्रजा कल्याण एवं नैतिक शासन की स्पष्ट अवधारणा, चक्रवर्ती आदर्श की छाया प्रस्तुत करती है। कालान्तर में कनिष्क, हर्ष आदि शासकों में भी धर्माचरण से प्रेरित होकर सुशासन स्थापित करने का प्रयास किया।

यह अवधारणा वर्तमान समय में भी नैतिक राजनीति एवं सुशासन के लिये अत्यन्त ऋसंगिक है।

प्रशासनिक अधिकारीगण– मिलिन्दपन्ह में कुछ प्रशासनिक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जिनमें सेनापति, प्रधानमंत्री, प्रधान–न्यायकर्ता, प्रधान कोषाध्यक्ष, राजछत्रधारी एवं अंगरक्षकों की गणना प्रमुख है।[18] महाउमग्ग जातक में महोसध नामक मंत्री कहता है– ''मैं ही राजा का श्वेत छत्र हूं, मैं ही राज्य का कार्यभार संभालता हूँ, अतः मुझे सावधान रहना चाहिए।[19] भाण्डागारिक के विषय में मिलिन्द पन्ह[20] में सूचना मिलती है– किसी राजा का भाण्डागारिक नित्य प्रातः और

सांयकाल राजा को उसके यश की याद दिलाता रहे– देव! आपके पास इतेन हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ, इतने पैदल सिपाही, इतना सोना और इतनी सम्पत्ति हैं, आप इसे स्मरण रखें।' इससे प्रतीत होता है कि भाण्डाागारिक सेना और राजाकोष दोनों का विवरण रखता था और राजा को सूचित करता रहता था।

पालि साहित्य में धनुर्विधा में शिक्षकों एवं सीमा रक्षकों के विवरण भी मिलते हैं।[21] सीमा सुरक्षा के उपायों का भी विस्तार से वर्णन मिलता है।[22]

न्याय एवं दण्ड व्यवस्थाः– पालि साहित्य शासित जनता के साथ न्याय के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। काक जातक मे बुद्विमान काक राजा को सचेत करता है– महाराज! राजा को सदा स्मरण रखना चाहिए कि उसे काम क्रोधादि के वशीभूत होकर अपने राज्य पर शासन नहीं करना चाहिए। किसी की विषय पर निर्णय लेने से पूर्व उसे सम्पूर्ण विषय के विभिन्न पक्षों पर विचार करना चाहिए और वही करना चाहिए जो न्यायसगत हो।[23] महाकोधि जातक के अनुसार राजा को चुगलखोरों की बात बिना परीक्षण किए, नहीं स्वीकार करना चाहिए।[24]

न्याय व्यवस्था में दण्ड की महत्वपूर्ण भूमिका होती है किन्तु केवल दण्ड से अपराध समाप्त नहीं होते हैं, इसके लिए सामाजिक एवं आर्थिक सुधार आवश्यक है। उपयुक्त व्यक्ति को पुरस्कार और पारितोषिक देने से उसमें उत्कृष्ट कार्य करने की क्षमता विकसित होती है। बुद्ध कहते हैं– गामणी। लोक में ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं जिन्हें राजपुरुष सुदृढ़ रज्जु से दोनों हाथ पीछे बाँधकर सिर मुंड़वा कर कर्कश ध्वनि से ढ़ोल पीटते हुए .... सिर काट देते हैं। उसे देखकर लोग पूछते हैं– इसने ऐसा क्या किया था कि इतनी अपमानजनक मृत्यु को प्राप्त हुआ? तब दूसरे उसे उत्तर देते हैं – यह राजद्रोही था, इसने किसी स्त्री या पुरूष का प्राण हर लिया था, इसी बात के प्रतिफल स्वरूप राजा ने इसको यह दण्ड दिया।[25] मिलिन्द पन्ह में महात्मा नागसेन राजा मिलिन्द को सलाह देते हैं– जैसे कोई आदमी राजा की सेवा करे, उससे प्रसन्न होकर राजा उसे कोई बड़ा पारितोषिक दे। उस पुरस्कार का स्मरण कर वह आदमी राजा की सेवा और अधिक करे।[26] .... राजा उसी को कहते हैं जो पूर्वकाल से धार्मिक राजाओं के बताए गये नियमों को बनाए रखें, धर्मपूर्वक शासन करके लोगों का अत्यन्त प्रिय बना रहे[27] ....। पालिग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के दण्ड एवं कारावास का विविरण मिलता है। कुछ दण्ड तो बड़े कठोर प्रतीत होते हैं जैसे जीवित व्यक्ति को बड़े भाण्ड (घड़े) में डालकर मुँह बंदकर, गीले चमड़े में लपेटकर उसपर चिकनी मिट्टी लपेट कर चूल्हे पर रखकर अग्नि लगा देना, रस्सी से गला घोंटकर मारना, चर्म, मॉंस हड्डी और मज्जा को पृथक करके मारना, चर्म उतारकर, मॉंस अस्थि मज्जा को काटकर मारना आदि।[28]

गुप्तचर व्यवस्था– गुप्तचरों की यथोचित व्यवस्था पालि ग्रन्थों में मिलती हैं। इसमें अनेक वेश धारण कर गुप्त सूचनाएँ राजा तक पहुंचाने वाले चालाक कर्मचारी थे। मुख्यतः साधु वेश धारण किया जाता था क्योंकि सामान्य जन धर्मभीरू होने के कारण साधुओं से अपनी बात साझा करती थी।[29] प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने के पश्चात राजा किसी निर्णय पर पहुँचता था।[30]

संघीय प्रशासन– पालि ग्रन्थों से गणराज्यों[31] का विवरण है जिनमें प्रायः संघीय प्रणाली प्रचलित थी। मजूमदार महोदय के अनुसार बुद्ध गणराज्यों के शुभचिंतक थे तभी उन्होंने लिच्छवियों को सात सिद्धान्तों[32] का उपदेश दिया था। इनमें सौमनस्य और मतैक्य सर्वाधिक महत्पूर्ण तत्व थे और इसकी दुर्बलता का सर्वोच्च कारण आपसी कलह और आंतरिक मतभेद था।

पालि साहित्य में वर्णित संघीय तत्व आधुनिक राजनीतिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसमें लोकतंत्र, संघवाद, संवैधानिक शासन तथा कानून का शासन प्रचलित होता है जो प्राचीन गणराज्यों / संघो की वैचारिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पालि ग्रन्थों में ऐसे 'लोक कल्याणकारी' शासन की संकल्पना मिलती है जो सत्ता केन्द्रित न होकर जनकल्याण केन्द्रित थी। बुद्ध का संपूर्ण चिंतन ही 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' पर आधारित है। इस दृष्टि से पालि साहित्य प्राचीन भारत में 'लोककल्याणकारी' राज्य (Welfare State) की सुद्रढ़ वैचारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। इस राज्य का राजा 'धम्मपालक होता है, धर्मचक्रवर्तिन होता है। इस राज्य में आर्थिक एवं सामाजिक समानता का प्रयास किया जाता है। इस व्यवस्था में कुल, जाति एवं वर्ग का भेद मिटाने का प्रयास होता है। शासन का मूल आधार अंहिसा एवं करूणा होती है। मानवीय संवेदनाओं को सर्वोपरि रखा जाता है। दस राज धर्म इसकी नैतिक संरचना प्रस्तुत करते हैं। यहाँ न्याय को भी मानवीय और लोकहित कारी बनाया गया है। समूह के निर्णय की मान्यता, सुदृढ़ लोकतंत्र की रीढ़ होती है। पालि साहित्य प्राचीन भारत के कल्याणकारी राज्य के सैद्धान्तिक घोषणापत्र की भाँति हैं।

संदर्भ–

1. पालि त्रिपिटक में राजनय प्रो0 शिवनंदन मिश्र, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2012 पृष्ठ 1–8
2. https://bharatdiscovery.org
   पालि भाषा, मारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर
3. palitetsociety.org
4. प्रो0 शिवनंदन मिश्र, वही, पृष्ठ 41 जातक खण्ड V, पृष्ठ 462–464; दीघनिकाय खण्ड III अगाञ्व सुत्त, पृष्ठ 661–663
5. दीघ निकाय खण्ड III, आगाञ्त्र सत्त, पृष्ठ 661–663
6. जातक खण्ड I, पृष्ठ 131; जातक खण्ड II, पृष्ठ 297
7. अंगुत्तर निकाय, तिकनिपातों चक्रवत्ति सुत्त, पृष्ठ 147–148; अंगुत्तर निकाय, पंचक निपातों–राजवर्ग पृष्ठ 513–515
8. दीध निकाय खण्ड III, अंगाञ्त्र पृष्ठ 661–663
9. जातक, जिल्द V, पृष्ठ 123,223
10. अंगुत्तर निकाय, सत्तक नियाता, मेत्तसुत्तं, पृष्ठ 281, 296
11. जातक जिल्द I, पृष्ठ 260; जातक जिल्द II, पृष्ठ 118, जिल्द III, पृष्ठ 274, 470, जिल्द IV पृष्ठ 153
12. जातक, जिल्द V, पृष्ठ 99, 100
13. जातक, जिल्द III, पृष्ठ 370–375
14. प्रो0 शिवनंदन मिश्र, वही, पृष्ठ 46–55
15. अंगुत्तर निकाय, पंचक निपातो, पृष्ठ 515
16. जातक जिल्द V, पृष्ठ 123, 223; अंगुत्तर निकाय, सत्तक नियाता, मेत्तसुत्तं, पृष्ठ 281, 296

17. प्रो0 शिवनंदन मिश्र, वही, पृष्ठ 42—43
18. मिलिन्दपन्ह, पृष्ठ 141
19. महाउमग्ग जातक, जातक जिल्द VI, पृष्ठ 389—90
20. मिलिन्दपन्ह, महावग्गो, पृष्ठ 47
21. मिलिन्दपन्ह, अनुमानवग्गो, पृष्ठ 396
22. अंगुत्तर निकाय, नगरोपम सुत्तं, पृष्ठ 297—299; संयुक्त निकाय, सलायतन संयुत्तं, पृष्ठ 1359—1360; अंगुत्तर निकाय, तिकनिपातो रखकार वग्गो, पृष्ठ 143; संयुक्त निकाय, सतिपट्ठन सुंयुत्तं, पृष्ठ 1823
23. जातक, जिल्द 1, सं0 140, पृष्ठ 486—487
24. जातक, जिल्द 5, सं0 528, पृष्ठ 245
25. संयुक्त निकाय, गामणि संयुत्त, पृष्ठ 1547—1548, दीघनिकाय, पायसि राजन्य सुत्त पृष्ठ 548
26. मिलिन्द पन्ह, पृष्ठ 167—168
27. वही, पृष्ठ 261—262
28. दीघनिकाय, खण्ड 2 पायसिन राजन्य सत्त, पृष्ठ 559 — 562; मंझिम निकाय, महा दुक्खक्रवन्ध सुत्त, पृ0 130—131; मिलिन्दपन्ह सब्बन्नुत्र त्राण वग्गो, पृष्ठ 230—231
29. संयुक्त निकाय, दुतीयोवग्गो सत्त जटिलसुत्तं, पृष्ठ 130—132
30. प्रो0 शिवनन्दन मिश्र, वही, पृष्ठ 71—72
31. Rhys Davids, T.W., Buddhist India, Calcutta, 1950 P. 22A.
32. Majumdar, R.C., Corporate life in Ancient India, Calcutta, 1920, PP 226-27; महापरिनिब्बान सुतान्त्र, पृष्ठ 72—75

संदर्भ

दीघनिकाय— प्रधान सम्पादक स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसी, 2005

संयुक्त निकाय— प्रधान सम्पादक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसी, 2000

मंझिम निकाय— वही, 1998

अंगुत्तर निकाय— वही 2002

मिलिन्द पन्ह— वही 1998

जातक अठकथा — पालि संस्करण (हिन्दी अनुवाद) सहित, शिव शंकर त्रिपाठी, 7 जिल्द 1985,

जातक— भदंत आनंद कौसल्यायन (6 जिल्द) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

static.sariputta.com